Chap-4

चतुर्थ अध्याय

साज-सज्जा

छान्दस अनुबन्धन :

हिन्दी काव्येतिहास में मुक्त छन्द वाली रचनाओं का श्रीगणेश सर्व प्रथम छायावाद से माना जाता है किन्तु, 'छन्द-मुक्ति' की जोरदार पहल विशेषकर 'निराला' की रचनाओं में होती दिखायी पड़ती है । काव्य के अतिरिक्त काव्य-सम्बन्धी सैद्धान्तिक मीमांसाओं में उन्होने छन्दीय बन्धनों को शिथिल करने का न केवल आह्वान किया, बल्कि अपनी मीमांसा के प्रमाण में तद्नुकूल रचनाएँ भी की । आधुनिक काव्य-साहित्य में निराला काव्य के अन्य पक्षों के अतिरिक्त 'छन्द' पर सर्वाधिक चिन्तन करने वाले कृतिकारों' में से हैं । वे 'मुक्तछन्द' में किसी भी प्रकार की छन्द रूढ़ि का निषेध करते हैं । कथ्य के अनुरूप ढल सकने वाले काव्य के उन्मुक्त प्रवाह में उनका विश्वास है, किन्तु यह प्रवाह आवृत्ति परक नहीं होना चाहिए । वस्तुतः निराला, पन्त और प्रसाद ने 'मुक्त-छन्द' का प्रयोग काव्य-रूढ़ि से मुक्ति या भविष्य में संभावित ऐसे काव्य-दोषों अथवा विकारों से बचाव के लिए किया था जिसके तहत् हिन्दी-कविता खड़ी बोली के आरम्भिक दौर में असंगत और सायास तुकयोजना का शिकार हो रही थी । इस प्रयास और प्रयोग को वे साहित्यमुक्ति के साथ जातीय-मुक्ति की चेतना भी मान रहे थे ।

छायावादोत्तर काव्य में मुक्त-छन्द का उत्कृष्ट निर्वाह अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन, नरेश मेहता, केदारनाथ अग्रवाल, धर्मवीर भारती, भारत भूषण अग्रवाल, केदार नाथ सिंह, कुँवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा मदन वात्स्यायन आदि की रचनाओं में हुआ है । किन्तु 'मुक्त-छन्द' में कुशल प्रयोक्ता की भूमिका के अतिरिक्त इन कवियों ने कुछ रचनाओं में ऐसे प्रयोग किये हैं जिसे 'छन्द-मुक्ति' की संज्ञा दी जा सकती है, 'मुक्त-छन्द' की नहीं । इस सन्दर्भ

में डॉ. सत्येन्द्र शर्मा की स्पष्ट मान्यता है कि, ''छायावादोत्तर काव्य में छन्दगत वैविध्य देख पाना उतना आश्चर्यग्रस्त अनुभव नहीं जितना 'मुक्त-छन्द' को 'छन्द-मुक्त' देख पाने में है।''[१]

नवगीतकार छायावादोत्तर कवितावादियों की भाँति छन्द से परहेज नहीं करते। वे यह भी नहीं मानते कि छान्दसिक अभिव्यक्ति से आधुनिकता को आँच आती है, बल्कि उनका विश्वास है कि, परम्परागत छन्दों में नई गति भरकर, नयी लय व नया अनुशासन उत्पन्न कर उसे आधुनिक संवेदना का वाहक बनाया जाना चाहिए। निराला की भाँति नवगीतकार छन्दों के बन्धन तोड़ 'मुक्त' और 'स्वच्छन्द' गान की ओर आसक्त हुए।

भारतीय काव्य-परम्परा वस्तुतः श्रव्य-प्रधान रही है। पाठ्य-प्रवाह के अतिरिक्त गेयता और श्रव्य मधुरता उसके अति आवश्यक गुण हैं। 'नयी कविता' का एकमात्र गुण उसकी पठनीयता है। क्योंकि 'श्रुति' के लिए लय, गति, यति और प्रवाह अनिवार्य है। दुर्भाग्य से 'नयी कविता' जिस तर्ज पर लिखी जा रही है, वह पाठ्यानन्द से रहित होने व लगभग गद्य होने के बावजूद असीम वैविध्य और अनिश्चित साँचों में ढलकर भी एक ही शिल्पसंज्ञा 'मुक्त-छन्द' के नाम से जानी जाती है। 'मुक्त-छन्द' लयाश्रित है, जबकि 'नयी कविता' में बहुत कुछ ऐसा लिखा गया है, और लिखा जा रहा है जो 'लय-रहित' ही नहीं 'लय-वर्जित' भी है। इसलिए नयी कविता का एक बड़ा हिस्सा 'छन्द-मुक्त' अथवा गद्यप्राय है, 'मुक्त-छन्द' नहीं। 'नवगीत' मुक्त-छन्दात्मक नहीं है, किन्तु उसका बाह्य ढाँचा कहीं-कहीं इसका आभास देता है। उसमें छोटी-बड़ी पँक्तियों का विधान या पद-विन्यास भावानुरूप आन्तरिक लय व कथ्य के सामंजस्य से निर्मित होता है।

भारतीय काव्य-धारा के वे अंश जो सामाजिकों के स्मृति-पटल पर ज्यों-के-त्यों अंकित रहते हैं और लोक-व्यवहार तथा सभाओं आदि में प्रसंगवश फूट पड़ते हैं, उसका एकमात्र कारण उनका 'छन्दबद्ध' होना है। यह मान्यता भी है कि 'छन्द' सामाजिक सम्बन्धों का हेतु है। छन्द रचनाकार के वेग को प्रकट कर सामाजिक में संचरित भी करता है। अतः छान्दसिक होने के कारण नवगीत में गेयता के अतिरिक्त स्मरणीयता का गुण भी विद्यमान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'ग्रन्थावली' में लिखा है कि, - ''छन्द ने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों को दृढ़ और स्थायी बनाने में बड़ा काम किया है। राजशेखर ने 'काव्य-मीमांसा' में काव्य करने की अपेक्षा काव्य-पाठ करने को अधिक महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि पाठ से उस सामाजिक उद्देश्य की सिद्धि होती है जो मनुष्य का सहज धर्म है।''

छन्द-विधान में एक मुग्धकारिणी शक्ति तथा तदनुरूप प्रभावोत्पादकता है। नवगीत तो संस्कारों से छन्दोबद्ध रचना है। दरअसल, उसने जिस लोक-जीवन को लय से घेर बैठे हैं। सुख-दुःख, मिलन-विरह, जन्म-मरण, ऋतु-उत्सव आदि में से कोई विषय शेष नहीं रह गया है। दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताओं से लेकर हृदय की रहस्यात्मक अनुभूतियों तक, सब पर लोक-कवियों की दृष्टि पड़ी है और उन्होंने सबको गीतों में प्राण-प्रतिष्ठा दी है।''[२] स्पष्ट है कि नवगीत ने लोकगीतों की लय को अपनी आवश्यकतानुसार छन्द का आधार बना लिया है।

छन्द की सर्वाधिक विशिष्ट भूमिका काव्यार्थ को अधिक लाक्षणिक, छन्दात्मक बनाने में है; गेयता,

सांगीतिकता या चमत्कार पैदा करने के लिए नहीं । इसलिए जातीय छन्दों, लोकधुनों आदि को अपनाते हुए नवगीत अपनी काव्य-जमीन पर बरकरार रहते हुए जो छन्दात्मक सृष्टि कर सका है, समकालीन काव्य-जगत् में उसका महत्वपूर्ण प्रदेय है ।

'नवगीत' छन्द पर आधारित रचना-सृष्टि है । शिल्प के स्तर पर नयी कविता से स्पष्ट वैभिन्यता का आधार भी इसकी छान्दिकता है । नयी कविता छन्द मुक्त आयोजन है जबकि नवगीत छन्दाश्रित रचना-विधान है । नवगीत में प्रयुक्त छन्द का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है । प्रायः प्रत्येक रचनाकार के स्वयं सृजित छन्द तो हैं ही, एक ही रचनाकार ने अनेक तरह के छन्दों का भी सृजन किया है। इस प्रकार नवगीत में प्रयुक्त छन्दों में आश्चर्यजनक वैविध्य दिखायी देता है । 'इन छन्दों में छन्द का परम्परागत आधार और शास्त्रीय स्वरूप ढूँढना व्यर्थ है क्योंकि यहाँ शास्त्रीय स्वरूप मिलने की बात तो दूर रही, छन्द-शास्त्र का ज्ञान रखने वाले नवगीतकार भी कम ही होंगे, किन्तु उनके यहाँ भी छन्द का अपना मौलिक रचाव ही उपलब्ध होता है ।'

पाठक के मन में एक जिज्ञासा यह भी उठ सकती है कि, क्या नवगीत 'लोकगीत' का छन्दानुकरण है ? तब हमें यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि, लोकगीतों में छन्द के अनेकविध रूप प्राप्त होते हैं, उनमें से कौन-सा छन्द नवगीत का मानक बना ? इस प्रसंग पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि, इने-गिने गीतकारों ने ही लोक-धुनों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है । 'लोक-धुन' प्रकारान्तर से लोक-छन्द ही है । बच्चन ने उत्तर प्रदेश की अनेक लोकधुनों पर आधारित स्पष्ट सूचनाओं सहित गीत लिखे हैं । इनके ये गीत 'नवगीत' की पूर्व छाया लिये हुए हैं । लोक-संवेदना की गहरी छाप लिए ठाकुर प्रसाद सिंह के नवगीत संकलन 'वंशी और मादल' में पूरब के आदिवासियों की गीत-चेतना को अभिव्यक्ति देने की बात कही गई है ।

गीत को लेकर निराला की छन्द-यात्रा अधिक मोहक और वैविध्य लिये हुए है । शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों पर आधारित लोक-धुनों अथवा रागों से प्रभावित और रचना की अन्तर्वस्तु की माँग पर उन्होंने नव्यतर छन्द-प्रयोग किये हैं । उनके गीतों में छन्द-रचना का आधार शास्त्रीय संगीत, लोक-संगीत और अन्तः संगीत है । छन्द-सृष्टि या गीत की गेयता-अगेयता अथवा धुन के आधार पर निराला के गीतों का वैसा बँटवारा नहीं किया जा सकता, जैसा कि कवीन्द्र रवीन्द्र के गीतों का किया गया है - ''रवीन्द्र नाथ ने दो प्रकार के गीतों की रचना की है । एक वह, जिन्हें शुद्ध साहित्यिक गीत कहा जा सकता है और दूसरे- वह जो केवल गाने के लिए संगीत की दृष्टि से लिखे गये थे । इस दूसरी कोटि के गीतों को उन्होंने केवल 'गान' की संज्ञा दी है ।''[३]

छन्द के मायने में नवगीत नित नूतन प्रयोग-विधा है । वस्तुतः छायावाद की परिसमाप्ति और नये रचनात्मक दौर जिसमें नवगीत का प्रादुर्भाव हुआ, छन्द-आसक्ति किन्तु छन्द-वैविध्य का काल है। यह मात्र संयोग नहीं है कि, नयी कविता के प्रतिष्ठित कवि भी नयी-नयी छन्द रचना के हिमायती बने । तारसप्तक-कवि प्रभाकर माचवे की यह कामना इस तथ्य की पुष्टि करती है - ''छन्दों की रचना के विषय में हमें नव-नवीन प्रयोग अपनाने होंगे । अन्य भाषाओं के छन्द भी हम लें । निराला द्वारा हिन्दी में लायी गयी मुक्त विषय चरणावर्तिनी, अतुकान्त अक्षर-मात्रिक, छन्द पर आश्रित तालात्मक पद्य

रचना-पद्धति श्रेयस्कर है । उसमें भावों के उतार-चढ़ाव के अनुकूल गति के परिवर्तित होते रहने की संभावना यदि हो सके, और गेयता अधिक तथा गद्यात्मकता (पाठ्यात्मकता) कम आ सके तो और अच्छा । अन्तर्गत् प्रास-योजना सहज हो, वह शब्दनिष्ठ न होकर अर्थ-निष्ठ हो ।"[४] स्पष्टतः प्रतीत होता है कि, रचनाकार न केवल छन्द में नव्यतम प्रयोग के आकांक्षी थे, बल्कि उन्हें परस्पर मौलिक छन्द-रचना के लिए प्रेरित किया जा रहा था और अर्थनिष्ठ सौन्दर्य को श्रेयस्कर समझा गया ।

दर असल नवगीत की छान्दिक संरचना की पृष्ठभूमि में पारम्परिक गीत की लम्बी परम्परा व लोकगीत की समृद्ध, ऊर्जामयी चिर नवीन लोक-परम्परा विद्यमान थी । नवगीत के छन्द ने पारम्परिक गीत से खड़ी बोली के शब्दों की तराशी हुई अभिव्यंजना तो ली जो लय में सहायक हो सकती थी किन्तु उसके ढांचे को सर्वथा अस्वीकार कर दिया । वह छन्द के लिए लोकगीत के शिल्प-समृद्धि का अवश्य आभारी है जिसके एक-एक छन्दात्मक ढांचे को उसने नये-नये रूपों में ढाला है ।

नवगीत की प्रकृति ही ऐसी है कि उसकी रचना किसी विशिष्ट छन्द अथवा लय में होती ही नहीं, ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक नवगीतकार के पास अपने छन्द-विधान का समृद्ध कोश है । नवगीतकारों की दृष्टि में "नवगीतों में छन्द का ठोस अनुशासन टूट गया है । यह आवश्यक नहीं है कि गीत छन्द-बद्ध, तुकसम्मत रूपाकार में ही सम्भव हो सकता है । गीत-शैली के इस प्रचलित स्वरूप और तज्जनित परिभाषा को मैं गीत की यांत्रिक रीढ़ मानता हूँ ।"[५] वस्तुतः छन्दों के प्रयोग से उत्पन्न हुई अनावश्यक शब्दों की भीड़ से तभी मुक्ति सम्भव है जब 'कठोर छन्दों' के अनुशासन की अवमान हो । इस कठोर छन्द के तुक-निर्वाह बन्धन ने कविता को नीरस, जड़ और यांत्रिक बना दिया था। यद्यपि लोग "साहित्यिक गीत को आज भी पिया, जिया, हिया आदि तुकों की पुनरावृत्ति मानते हैं, उनके विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि गीत नहीं, वे ही समय से पिछड़ गये हैं।"[६] मुक्त छन्द से जहाँ गीत की 'नीरसता' समाप्त हो गई, वहीं इस (मुक्त छन्द) के प्रणयन से छन्दों की विविधता ने भी स्थान बना लिया है । 'चरणों' की भी कोई निश्चित और निर्धारित संख्या नहीं है, चाहे वह आठ पंक्तियों में समाप्त हो या बीस पंक्तियों में । इन्हीं गीतों को सरसता प्रदान करने के लिए कुछेक नवगीत कवियों ने लोक धुनों और छन्दों का प्रयोग किया है । निराला ने जो बात सिद्धान्त रूप में कही थी, उसी का अनुकरण करते हुए उसे व्यावहारिक रूप देकर जो 'नयी दृष्टि छन्दों' के क्षेत्र में, नवगीतकार ने दी है, निश्चित ही वह श्लाघ्य है ।

रचनाकारों का यह अनुभव भी रहा है कि प्रत्येक विषयवस्तु अपनी स्वयं की संरचना (फार्म) लेकर उपस्थित होती है । जो विषयवस्तु जिस संरचना में व्यक्त होना चाहिए वही उसका फार्म बन जाता है । समकालीन काव्य में छन्दबद्ध रचनाएँ आलोचकों की दृष्टि में इसलिए अप्रासंगिक होती रहीं कि वे हमारे ऊबड़-खाबड़ समय को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हो पाईं । किन्तु यह एक तथ्य है कि छन्दबद्ध रचनाओं के फार्म में व्यापक बदलाव आया । बच्चन, अंचल, दिनकर आदि कवियों की छन्द-रचना के साथ नवगीत के छन्द-रचना के तुलनात्मक अध्ययन से यह अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है । नवगीत ने कुछ अंशों में पारम्परित छन्द को तोड़ा है और वह निरन्तर नये छन्दों की तलाश में प्रयत्नशील रहा है । नवगीतकार हर बार एक नये छन्द की संरचना में स्वयं को तल्लीन पाता है । कुछेक रचनाएँ मुक्त छन्द की दिशा में अभिनव प्रयास करती हैं किन्तु वे भी छन्द-मुक्ति

की ओर पूर्णतः नहीं जा पातीं, क्योंकि ऐसा करने पर नयी कविता और नवगीत के मध्य की एक स्पष्ट पार्थक्य रखा समाप्त हो जाएगी । 'मुक्त-छन्द' वाली रचनाओं में 'आर्ट ऑफ रीडिंग (Art of Reading) का वह आनन्द भी है जिसे महाप्राण निराला ने 'मुक्त-छन्द' का एक आनुषंगिक गुण माना है । प्रसंगवश श्रीकान्त वर्मा की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''हम होंगे, वैशाली होगी
हम न हुए ?
वैशाली होगी
नगर नहीं वैशाली
स्मृति है
उनकी
जो हमसे पहले आये थे
कहते थे जो
हम होंगे, वैशाली होगी
हम न हुए ?
वैशाली होगी ।''[७]

'मगध' संग्रह से अपेक्षया संक्षेप वैशिष्ट्य और अर्थ-संभार लिए इस रचना को यहाँ उद्धृत करने का प्रयोजन यह दिखाने के लिए किया गया है कि, किस तरह कोई रचना 'मुक्त-छन्द' होते-होते रह जाती है । रचना है पहले और अन्तिम बन्द में शब्द-संगति, लय-नियोजन और अर्थ-चमत्कार के कारण जो काव्यत्व है, उसमें मध्य का बन्द सपाट अभिव्यक्ति के कारण गद्यात्मकता का व्यवधान लेकर प्रस्तुत होता है । यहीं नहीं, इस संग्रह की सभी रचनाएँ यदि काव्य है तो मात्र अभिव्यक्ति-वैचित्र्य और कथ्य के सामञ्जस्य के कारण ।

नवगीत की पहली पँक्ति जो प्रायः छोटी 'मध्यम या अपवाद के रूप में लम्बी और कभी-कभी तो मात्र एक-दो शब्दों से निर्मित हुई होती है, बहुत महत्वपूर्ण होती है । वह अपनी अभिव्यंजना में अक्सर नीचे आने वाली पँक्तियों की पूरक होती है । किन्तु वह कभी नाटकीय शैली में संवाद रचती, कभी आकस्मिक तौर पर सम्बोधन करती और कभी शेष पंक्तियों के प्रति अद्भुत जिज्ञासा जगाती है, किन्तु इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य पार्श्ववर्ती अतिरिक्त गूँज बन जाना है । शीर्षस्थ कवि नवगीतकार डॉ. केदारनाथ सिंह इस 'प्रथम पंक्ति' को गीतों का कमजोर बिन्दु मानते हैं । उनकी आशंका है कि 'ये पंक्ति समग्र रचना की नियति बन जाती है । सारी 'कवि-कल्पना' उसी के वृत्त में घूमती है, इससे गीत का सामूहिक प्रभाव क्षीण होने लगता है; इसलिए गीत के इस सांचे को लचीला बनाया जाना चाहिए' । वरिष्ठ कवि की यह आशंका निराधार नहीं है, किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि नवगीत में यह 'टेक' पंक्ति रचना की शक्ति बनकर प्रतिष्ठित हुई है, कमजोरी नहीं; और उसकी बार-बार आवृत्ति पाठक के मन में गीत के अगले बन्द के अनुसार नया सन्दर्भ उद्भाषित करती हुई मर्म को छूती है । जहाँ यह पंक्ति रचना की मात्र अनुधावन बनकर सम चरणान्त के प्रयोजन से आती है, वहाँ वह नवगीत नहीं, पारम्परिक गीत या कविता-गीत होता है । इस सन्दर्भ में ठाकुर प्रसाद सिंह की

निम्न नवगीत-पंक्तियाँ देखें -

"मैं वंशी
माँ हमारी दूध का तरु
बाप बादल
औ'बहन हर बोल पर
बजती हुई मादल
उतर आ हँसी ।
कि मैं वंशी ।"[८]

यहाँ 'मैं वंशी' टेक पंक्ति रचना की विधायिका पंक्ति होकर भी सम्पूर्ण रचना की नियति नहीं है । वह स्वतंत्र अर्थ-व्यंजक है और रचना की हर पंक्ति में पिरोयी हुई पुनः अपने आशय पर बल देती है ।

नवगीत की छन्द-प्रकृति परम्परागत लयात्मकता, निश्चित मात्रा का वर्ण समतुकान्त, अनुप्रास आग्रही और टेक पंक्ति पर आधारित नहीं है । हाँ, इसके छन्द की आवश्यक पहचान उसकी लय है । यह लय शब्दानुवर्तनी उतनी नहीं जितनी अर्थानुधावनी है । यद्यपि नवगीत की छान्दिकता संगीत सापेक्ष नहीं है किन्तु लय को संगीतात्मकता से अविच्छिन्न कैसे किया जा सकता है ? इसलिए नवगीत में यदि संगीत का प्रच्छन्न आभास मिलता है तो वह उसकी छन्द प्रकृति का ही अंग है । नवगीत के छन्द-वैशिष्ट्य को लेकर नवगीतकार 'अनूप अशेष' का यह कथन विशेष उल्लेखनीय है - "नवगीत की अपनी लय और छन्द होते हुए भी यह कहीं पर अपने पहले से मेल नहीं खाता । दरअसल यह खास छन्द लय में लिखा ही नहीं जाता । इसके जातीय संस्कार ही इसके प्रमुख तत्व रहे ।"[९]

हमारी आधुनिकता निश्चय ही किसी छन्द की तलाश में है और उसे पाने के लिए व्याकुल है । शलभ श्री राम सिंह के अतुकान्त विषम मात्राओं वाले छन्द इस कथन की पुष्टि करते हैं -

"शंख फूँका साँझ का तुमने
जलाया आरती का दीप
आँचल को उठाकर
बहुत धीमे
और धीमे
माथ से अपने लगाकर
सुगबुगाते होठ से इतना कहा - हे साँझ मइया ।"[१०]

या फिर -

"धरे हथेली गाल पर
सोच रहा हूँ कल की बातें -
गये वर्ष की कुछ तस्वीरें

झूल रहीं दीवार पर
धरे हथेली गाल पर ।"[११]

नवगीत में कुछ रचनाकारों के यहाँ मुक्त छन्द का अन्तर्विधान है, हालांकि वह अन्तर्विधान वाह्य तौर पर छान्दिक अनुशासन से बँधा हुआ है । शलभ श्रीराम सिंह, रमेश रंजक व श्याम सुन्दर दुबे के नवगीतों में यह प्रवृत्ति अधिक मुखर है -

"चू रहे
निबोरी के साथ के पनीले दिन
शायद न खोली होंगी यादें
बाँध गया होगा लेकिन
चू रहे -
रह-रहकर टूटा होगा तनाव
कौंधी होगी बिजली
भीतर अतुकान्त किसी कैदी ने
छेड़ी होगी कजली
लिपट गये होंगे फैले-फैले
दिन-से-दिन ।"[१२]

यहाँ पूरा बन्द छन्द के बाह्यानुशासन से बँधा है किन्तु छोटी, बड़ी अतुकान्त पंक्तियों का रचाव मुक्त-छन्द का है । ऐसा ही एक और बन्द देखें -

"शिल्प मेरा वह न था
कि प्रश्नों को देखा विराम की आँखों
शिल्प तो वह था
कि इतिहास को देखा आयाम की आँखों
ज्यामिति जिसकी
परिभाषित
किया कोण मन का ।"[१३]

छन्द व मुक्त छन्द का सम्मिलित रचना-विधान उन नवगीतकारों में अधिक दिखाई देता है जो नवगीत के अतिरिक्त नयी कविता लेखन में भी समान रुचि व अधिकार रखते हैं । इनकी विशेषता यह है कि इस साझे शिल्प-प्रयोग में उनकी रचनात्मकता कहीं कमजोर नहीं पड़ती । अक्सर, मुक्त-छन्द में लिखने वाले कवि श्याम सुन्दर दुबे का यह छन्द-विधान देखें जिसमें दोनों 'फार्म' कवि की अभिव्यक्ति पर प्रभावी है -

"आहटें सुनता
बहुत नजदीक से

पाँखुरी के लौटने की
और उजली हँसी
जैसे झनझनाट
फैल जाए ललक जागे
वृन्त टहनी भेंटने की ।"[१४]

नवगीत में छोटे-छोटे छन्द, दो-दो, तीन-तीन पंक्तियों वाले छन्द, विषम अतुकान्त छन्द से मुक्त-छन्द की यात्रा के अभिनव उदाहरण हैं ।

छान्दिक रचनाओं में भाषा के दबाव ग्रस्त स्वरूप को स्पष्ट किया गया और आलोचकों ने कहा कि छान्दिक रचनाओं का दोष यह है कि कवि का महत्वपूर्ण काव्य-आवेग केवल शब्दों के तालमेल, तुक-प्रबन्धन, लय समन्वयन में व्यय हो जाता है । इसलिए छन्द-प्रधान रचनाओं में काव्यावेग की न्यूनता परिलक्षित होने लगती है । मुक्त छन्द और नयी कविता के पक्षधर इस तथ्य को अत्यधिक आत्म विश्वास के साथ प्रस्तुत करते हैं । लेकिन ये समीक्षक अगर समग्रतः आकलन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'छन्द' कोई अतिरिक्त व्यायाम नहीं है । छन्द एक स्वतः स्फूर्त ढाँचा है और उस ढाँचे की तैयारी में वस्तु या अनुभूति के क्षेत्र में कहीं कोई क्षति होने की गुंजाइश नहीं है । इसलिए 'छन्द' कविता का एक ऐसा उपकरण है जो उसमें अतिरिक्त सौन्दर्य, क्षमता उत्पन्न करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, "छन्द कोई बाह्य वस्तु नहीं है । बाह्य जगत में दिन, रात, ऋतु परिवर्तन और भू-चक्र का नियतानुवर्तन चल रहा है । मानव-शरीर में नाड़ियों का स्पन्दन, श्वास-प्रश्वास की क्रिया नियत ताल पर चल रही है । इस नियतानुवर्तन को हम अनुक्रमता कहेंगे । इदता-प्रधान बाह्य-जगत में हरिदृश्यमान अनुक्रमता जब अहंता प्रधान मानव के अन्तर्जगत में प्रतिभाषित अनुक्रमता के ताल से ताल मिलाकर चलती है तो लय और ताल की अनुभूति होती है । यही छन्द है ।"[१५]

लयात्मकता :

नवगीत छान्दिक संरचना है, इसके छन्द-शिल्प में वैविध्य है । वह कभी टेकाश्रित, कभी टेकविहीन, कभी समचरण तो कभी विषम चरण-वृत्त पर आधारित और कभी-कभी तो रूपाकृति से छन्द न लगता हुआ भी पढ़ने में गेयता और प्रवाह का आनन्द लेते हुए लयाश्रित है । 'लय' छन्द की अन्तर्धारा है जो रचना-विधान में गति, यति के संघात से जन्म लेती है । नवगीत के लय की ठोस बुनियाद लोकगीतों तथा लोक-जीवन पर आधारित भारतीय लोक जीवन के कार्य कलाप में भी विद्यमान है। खेतों में काम करता किसान लोक-रागों में गाता हुआ श्रमरत रहता है । और तो और, यदि शब्दों का उच्चारण नहीं भी करता तो भी लय का आलाप भर कर अन्जाने ही श्रम का परिहार करता है। लोक-जीवन की यह लयात्मकता भी गीतों के माध्यम से नवगीत में प्रतिष्ठित हुई है । "नवगीत के छन्द का निश्चित मानक न होने के कारण अर्थ के आग्रह पर बल दिया गया है तथा शब्दों की संगति मनोनुकूल बैठाई गई है, और यह संगति पूरे गीत में बनी रहने के कारण एक नये छन्द का सृजन-हेतु बन गयी है, और तदनुरूप लय की धारा अन्तर्भुक्त हुई है ।"[१६]

एक गीत में समग्रतः एक-से छन्द की अपेक्षा तो रहती ही है ताकि उसकी लय में तो एकरूपता हो, किन्तु नवगीत में इस अपेक्षा की उपेक्षा के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं । 'वंशी और मादल' के प्रसिद्ध गायक ठाकुर प्रसाद सिंह के कुछ गीत सुनिश्चित छन्द-विधान के अभाव में लय की धारा को भंग करते लगते हैं । क्योंकि उनके गीतों में कहीं-कहीं तो 'टेक' भी नहीं है, मात्राएँ घटी-बढ़ी मिलती हैं । एक-आध गीतों में एक साथ ही दो या तीन छन्दों का प्रयोग किया गया है । लय का ध्वन्यात्मक स्वरूप है । वह ध्वनि से प्रकट होती है और शाब्दिक संगति तथा आलाप से संयोजित होती है । गीत में आलाप न सही, छान्दिक सौष्ठव तो आवश्यक है ही, जिसपर लय का आधार टिका है । किन्तु नवगीत में लय का व्याघात आपवादिक रूप में ही मिलेगा । 'वंशी और मादल' के अधिकांश गीत लय-संयोजित हैं । नवगीत की लयात्मकता पहले कुछ अन्जानी या फिर कुछ बे पहचानी-सी अवश्य लगती है, उसका कारण उसके नित-नूतन छन्द हैं । हालाँकि छन्द स्वतः लय की निर्मिति है; इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि नयी लयों का सर्जन गीत के वस्तु पक्ष की माँग है । अर्थात् गीत में जैसे-जैसे विचार पक्ष प्रबल हुआ और तात्कालिक जीवन को व्यक्त करने की क्षमता हासिल होती गई, लय में नवीनता और अनेकरूपता आती गई है । उसकी लोकोन्मुख प्रवृत्ति के कारण भी उसने वहाँ से लय की ताज़गी अख़्तियार की है । तुकों के अन्त्यानुप्रास की बानगी भी नवगीतों में कम ही देखने को मिलेगी, और मिलेगी भी तो नये ढंग से । यथा -

> ''कहने को
> प्यार बहुत गाढ़ा था
> गहने की तरह जिसे गढ़ा था
>   बन्धु !
> मिट्टी खा गई उसको
>   आज जब
> पाया अकेलापन
> खाली घर, खुला आँगन
> गहने को निकाला खोद कर
> बन्धु, इतना खुरदरा था वह
> तबीयत ही न हो पायी
> कि रखलें गोंद पर
> जो न पाया गया हमसे
>   बन्धु,
> मिट्टी पा गई उसको
> मिट्टी खा गई उसको ।''[१७]

इन पंक्तियों में तुकों का विन्यास अथवा ताजगी देखने लायक है । एक तो टेक की प्रथम पंक्ति है ही नहीं जो लय का 'आधार' होती है । बन्द की पाँचवी पंक्ति में अन्तर्निहित लय-रचना को बाँधती है । जन-सामान्य में प्रचलित उक्ति 'कहने को' जैसे सजीव शब्द-बन्द से शुरू रचना 'बन्धु'

के सम्बोधन में भी यति नहीं लेती, वह यति लेती है 'मिट्टी खा गई उसको' पद-बन्ध में, और इस यति में आगे के कथ्य का गत्याभास है। यह लय की वही 'पाश्ववर्ती अतिरिक्त गूँज' है जो नवगीत की गेयता को अलग रंगत देती है।

नवगीत संगीतमुक्त तो हो सकता है किन्तु भाव-शून्य अथवा गेयता से रहित नहीं। नवगीत के ऐसे उदाहरण इस धारणा का खण्डन करते हैं कि, "जीवन में विचार की प्रधानता बढ़ी तो गीत संगीतमुक्त हो गया। अब वह गाया नहीं जाता, पढ़ा जाता है।"[१८] अन्त्यानुप्रास, समचरण, सममात्रा और तुकान्त शब्दावली से रहित यह नवगीत तुकों की नयी सार्थक ताजगी का उदाहरण भी है जिसकी पाँचवी पंक्ति का तुक रचना की अन्तिम पंक्ति से मिलता है और कथ्य को अधिक संजीदगी प्रदान करता है और मानवीय सम्बन्धों में आयी रिक्तता को मूर्त कर देता है।

नवगीत मूलतः गेय विधा है जिसमें 'लय' की अन्तर्व्याप्ति स्वाभाविक है, किन्तु कथ्य के मूल्य पर लय को प्रश्रय नवगीत को स्वीकार न हुआ। आधुनिक जटिल और त्रिशंकु जीवन की तनावमय अभिव्यक्ति गीतात्मक विधा के लिए चुनौती थी, विशेषकर लयाधार पर 'जीवन की उलझी हुई संवेदनाओं' का काव्यात्मक निष्पादन प्रायः असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। नवगीत-कवि इस कठिनाई से सुपरिचित हैं और इसीलिए उन्होने लय की अपेक्षा व्यक्ति जीवन के आन्तरिक उथल-पुथल, द्वन्द्व, जिजीविषा और तनाव का यथार्थ अंकन कर काव्योचित धर्म का निर्वाह किया है। नवगीतकार का यह एहसास देखें-

"नीम का पेड़
बाबा की जगह सगुन-पंछी
बूढ़ा जर्जर
आँखों में पतली स्वप्न-डोर
समय का काल-चक्र घूम गया
पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगत की पुण्य प्रतीक्षा में
धुँआ, सड़क, कत्ल
व्यवस्था की कुर्सी की अंधी दौड़
सूखा-अकाल अतिवृष्टि
भूख, पसीना, कालाबाजारी
घूमता हुआ कालचक्र
देश-देशान्तर तक
पिसता टूटता असक्त आदमी।"[१९]

आधुनिक जीवन की तल्ख अनुभूतियों को साकार करते हुए भी नवगीत प्रयोगवादी कविता की भाँति न तो अबूझ हुआ और न ही पद्यात्मकता से च्युत। उसमें लय का सन्धान है भी तो कथ्य को पुरजोर बनाने और बल देने के लिए है। लय कहीं भी अभिव्यक्ति के आड़े नहीं आती, बल्कि उसके पीछे चलकर उसे नवगीतात्मकता प्रदान करती है। लय की अवहेलना कर गीत को बदले हुए परिवेश में संक्रान्त और तनावयुक्त व्यक्ति की संवेदना को वहन करने में सक्षम बनाने के लिए नवगीत

ने सफल और आवश्यक प्रयोग किए । लेकिन ये प्रयोग 'कथ्य' को अधिक बोधगम्य बनाने की दृष्टि से था । प्रयोग के लिए किये गए प्रयोग में दुरूहता व ज़टिलता का भी स्वाभाविक समायोजन हो जाता है । नवगीत इस विडम्बना से इस लिए बच सका कि, समकालीन सामाजिक यथार्थ-बोध और वैयक्तिक अनुभूति को व्यक्त करने के लिए न तो वह पश्चिम के आयातित भावबोध से प्रेरित हुआ और न ही उसने काव्य-सत्ता के साथ अनावश्यक छेड़खानी की ।

राग-रंग :

'राग' मानव-जीवन का आधार-तत्व है, जो मनुष्य को मनुष्य से और मनुष्येतर बाह्य प्रकृति से जोड़ता है । भले ही इसे दर्शन के क्षेत्र में त्याज्य औड़ मनुष्य-गति के निर्वाण में बाधक माना गया हो । 'राग' जीवन को 'आसक्ति' प्रदान करता है उसे बाँधता है । इस आसक्ति और बन्धन में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता को ढूँढ़ता है । रागात्मक सम्बन्ध-सूत्र तो मनुष्येतर जीवों भी दिखाई पड़ता है । यह मनुष्य की भावभूमि व चेतना-विस्तार का कारक है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'रस-मीमांसा' में 'काव्य' के अन्तर्गत 'राग' की सविस्तार मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है । उन्होंने प्रेम और करुणा को राग की वासना का प्रवर्तन भाव बतलाया है । यह प्रेम और करुणा ही संवेदना का बीज भाव है, और 'संवेदना' काव्य की प्रेरणाभूमि है । आनंद के प्रयत्न पक्ष या साधनावस्था वाले काव्य में नायक के कालाग्नि सदृश क्रोध के मूल में भी करुणा विद्यमान है । आदि कवि वाल्मीकि के कंठ से उद्भूत बहेलियों के प्रति क्रोध का बीज भाव करुणा ही है जो प्राणीमात्र के लिए कवि की गहन रागात्मकता का परिणाम है । काव्य की शास्त्रीय शब्दावली में यह 'अनुभूति' और प्रचलित शब्दावली में 'संवेदना' है । राग के ही सहारे "कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तःप्रकृति का सामञ्जस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है ।"[२०]

नवगीत की राग-चेतना किसी वर्ग व विशिष्ट क्षेत्र तक सीमित नहीं है । यहाँ जितना राग ग्रामीण अंचल के किसान के प्रति है, उतनी ही आत्मीयता नगर-महानगर में रहने वाले किसी क्लर्क या चौकीदार की जिन्दगी से भी है । नवगीत में राग-चेतना का वैशिष्ट्य उसके व्यापक प्रसार क्षेत्र में है, जिसमें मात्र मनुष्य ही नहीं, पशु, पक्षी, नदी, तालाब, पेड़-पौधे आदि सभी चर-अचर जगत समाविष्ट है । "राग की वासना सभी क्षेत्रों में आकर्षण और सौन्दर्य पाती है क्योंकि 'रागत्व' पदार्थों व प्राणियों में नहीं है, वह तो रचनाकार के अन्तःकरण में है जो बाह्य जगत से जुड़ने का आधार है ।"[२१]

बौद्धिकता राग को संयमित अवश्य करती है किन्तु उसका निषेध नहीं । राग विहीन बौद्धिकता और चाहे जो हो, कवित्व का दर्जा नहीं पा सकती । नवगीत में राग के स्फुरण में बौद्धिकता का परिसीमन है, इसलिए वह न तो मात्र भाव का विगलित स्वर है और न बुद्धिवाद का पिटारा । नवगीत आत्मकेन्द्रित नहीं, वह राग की बुनियाद पर जनमुखी, परिवेशगत, प्रकृतिगत, युगबोधक और जीवनमुखी है ।

यह रागात्मकता सम्पूर्ण नवगीत विधा में अन्तर्निहित और परिव्याप्त है; जिसका आरम्भ निराला जी के गीतों से ही हो गया था । इस प्रसंग में निराला जी के 'हृदय-छन्द' गीत की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

"जी में न लगी जो विकल प्यास
आँखों न देखने आना तुम.....
यदि मिला न तुमसे हृदय छन्द
तो एक गीत मत गाना तुम ॥"[२२]

डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार, "मुक्त छन्द के कवि द्वारा की गई 'हृदय छन्द' की कल्पना भी असाधारण है । यह कोई छन्दात्मक प्रयोग न होकर उसकी गहन रागात्मकता का प्रतीक है जो किसी-न-किसी रूप में निराला के सारे काव्य में आन्तर्निहित है ।"[२३]

विशिष्ट भाव-बोध की कविता के बावजूद, गहन रागात्मकता, कवित्व को सूक्ष्म, धारदार व सम्प्रेषणीय गुण-धर्म देती है । 'कनुप्रिया' के कवि भारती की चरम तन्मयता का क्षण फिर वह 'ठण्डा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' के गीतों में राग की सघनता के कारण पाठकीय संवेदना का सहज अंग बन जाता है । ऐतिहासिक परिपार्श्व में मानवीय प्रकृति को खंगालती और व्यक्ति तथा सत्ता के रिश्ते को विश्लेषित करती श्रीकान्त वर्मा की 'मगध' में संग्रहीत रचनाएँ गहन रागात्मकता के कारण कथ्य में वस्तु-सतह को छूतीं मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं, किन्तु शैल्पिक आग्रह और कहीं-कहीं बौद्धिक दबाव के कारण वे नवगीत होने से रह जाती हैं ।

'राग' सामाजिक सम्बन्धों की बुनावट का अन्तःसूत्र है । 'कवि' समाज और लोक से परे कोई अलग या विशिष्ट प्राणी नहीं है । उसकी राग-चेतना का विस्तार उसके सृजन को अधिक लोकोन्मुख और अधिक प्रामाणिक अनुभूति प्रदान करती है । अन्यथा राग का संकुचन 'काव्यानुभूति' को संदेहास्पद, दुरूह और 'व्यक्ति' को जड़ होने से रोक नहीं सकता । नवगीत में राग का प्राधान्य कविता में पहली बार नहीं है वरन् वह पूर्वमध्ययुगीन, भारतेन्दुकालीन राग प्रेरित काव्य-धारा की विशिष्ट कड़ी है ।

काव्य-रचना के लिए अन्य अवयव चाहे समय-समय पर प्रासंगिक अथवा गौण क्यों न होते रहे हों, किन्तु राग-तत्व कविता की मूल शर्त रहा है । उसकी प्राथमिकता तथा अनिवार्यता कभी उपेक्षित नहीं की गई । भारतीय और पाश्चात्य काव्य-शास्त्र जिस अनिवार्य बिन्दु पर कोई मतभेद नहीं रखते, वह रागात्मकता ही है । रागात्मकता के सहारे कवि वस्तु, संसार से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करता है, उसे कविता में रचता है, और पाठकों के सामने प्रस्तुत कर वांछित अनुभूति जगाता है । इस रचना-प्रक्रिया में रचनाकार वस्तु-जगत् से तादात्म्य स्थापित करता-कराता हुआ तटस्थ भूमिका निर्वाह करता दिखाई देता है । इस प्रकार 'राग' कवि-सृजन और काव्य-सम्प्रेषण का आधार है ।

कवि की राग-वृत्ति का संकुचन और प्रसार कविता की शक्ति और क्षीणता की कसौटी रहा है । राग-वृत्ति का संकुचन 'मानव जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति से वंचित' करता है और व्यक्ति को जड़ीभूत बनाता है । मध्यकाल का भक्ति-काव्य जन-जीवन का कंठहार बन सका, इसके पीछे भक्त कवियों की राग-वृत्ति का सामाजिक प्रसार ही है । कबीर के काव्य में लोक-संघर्ष, जायसी की 'नागमति' में सामान्य नारी-हृदय की अनुभूति दशाएं, सूरदास की रचनाओं में कृष्ण के माध्यम से ब्रज और मथुरा का सम्पूर्ण लोक और कर्मनिष्ठा एवं तुलसी में श्री राम के राज्य-निष्कासित जीवन में जो लोक-सौन्दर्य प्रतिष्ठित हुआ है, उस रचना का आधार राग ही है । 'रीति काव्य' लोक-जीवन की गाथा

नहीं बन सका; इसका प्रमुख कारण 'इसके पीछे उसकी वर्ग (सामन्ती जीवन) केन्द्रित संकुचित रागात्मकता है ।

नवगीत जीवन की बहुविध दशाओं और दिशाओं का गान है । भक्ति-काव्य के पश्चात जीवन का समग्र विस्तारण जितना नवगीत में मिलता है, वैसा अन्य समकालीन विधाओं में नहीं । इसका कारण रचनाकार की लोक-व्याप्त संवेदना है जो 'राग' की उपज है । छायावाद, छायावादोत्तर, और नयी कविता के गीत क्रमशः वैयक्तिक, अभिजात, गहरी प्रणयानुभूति व वर्ग-विशेष की अति-वैचारिक अभिव्यक्ति में सीमित होकर रह गए । नवगीत ने इन सीमाओं को तोड़ा और गांव की प्राथमिक इकाई से लेकर कस्बा, नगर और महानगर व राजधानी तक दृश्यमान हुआ है ।

नवगीत के रागात्मक लोक-व्याप्ति की विशिष्टता यह है कि जीवन के किसी पहलू को देखने में अति बौद्धिकता ने उसकी रचनात्मक सरलता को बाधित नहीं किया और उसमें जीवन की पुनर्रचना का एक विस्मयकारी संतुलन दिखाई देता है । जीवन का कोई भी बड़ा या छोटा पक्ष नवगीत से अनदेखा नहीं रहा है । उजली हंसी, उपले की आंच, अम्मा की रामायण, माथे का पसीना, पत्थर के नाव, सांपों का पहरा, कजली, पत्नी की साड़ी, टूटी खाट, मुड़े हुए अखबार की तरह लोग, फटी धोती, बस्ती का धुंआँ, बच्चों की चीख, तपेदिक ग्रस्त गांव, टूटी गरदन, बूढ़ा पिता, पीले चेहरे, बासमती धान, पान-पतौखी, नमक की हवाएं, टूटी शिला, पियासी गाय, नक्शे पटवारी के, लकड़ी का गट्ठर, सास का दहेज, एक लड़की की सयानी देह और चूड़ियों में टूटती मरजाद के अतिरिक्त मानवीय चेतना की आदिम वृत्ति - प्यार, सद्भाव व मनुष्यता का उद्घोष आदि जीवन का कोई भी पक्ष या पहलू नवगीत की निगाहों से अछूता नहीं रहा है ।

गांव, समाज और संयुक्त परिवार के विघटन का जैसा यथार्थ चित्र नवगीत में दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र किंचित मात्र ही । नवगीत ने जिस जीवनधारा को साधा और स्वर दिया है, वह वर्ग-विशेष का जीवन नहीं है । उसके चरित्र-नायक सर्वहारा, शोषित, पीड़ित, निम्न-मध्य और कभी-कभी उच्च-मध्यवर्ग के हैं ।

राग का निषेध होने पर काव्य की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है । रागात्मकता गीत या नवगीत की मूल शक्ति है । राग के माध्यम से क्रान्ति, विद्रोह व असहमति की स्पष्ट अभिव्यंजना होती है, यह बात अनेक नवगीतकारों की रचनाओं में देखी जा सकती है जिनमें केदारनाथ अग्रवाल, रमेश रंजक, उमाकान्त मालवीय, शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर, अनूप अशेष आदि उल्लेखनीय है । इस सन्दर्भ में अनूप अशेष की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

''गांव हमारा
अम्मा-बाबू की आशीषों का
हंसी-ठिठोली
पीहर-सासुर
चेहरों-शीशों का
शील-शरम सब यहां बिकाऊ

बम्बइया बाना !
भैया !
शहर नहीं आना ।...
गांव हमारा
दिया-देवारी सूरज-रैना का
महके फूलों
मांग-सिंधौरा
तोता-मैना का
उज्जर-बाजर यहां अंधेरा
घर बूचड़ खाना
भैया !
शहर नहीं आना ।"[२४]

अन्य समकालीन काव्य-धाराओं की तरह नवगीत में बुद्धि और रागत्व में न तो कोई स्पर्धा है और न ही किसी एक तत्व की सम्प्रभुता । यह कहना भी अनुचित और अनावश्यक है कि किसी भी एक तत्व का अतिरेक काव्याभिव्यक्ति को असंतुलित कर देता है । नवगीत में राग और बुद्धि का संश्लिष्ट विधान ही उसके वैशिष्ट्य का परिचायक है -

"जाल है भीतर नदी के
घाट से हट कर नहाना ।
पीठ पर लहरें, हवाएं
झेलते हैं
आइने-सा मुसकराकर'
आदमी से खेलते हैं,
भीड़ से भीगे तटों के -
पत्थरों का क्या ठिकाना ?
धार उल्टे पांव चलकर
सीढ़ियों से सट रही है,
फिर करोड़ों की इमारत
हां-नहीं में छंट रही है,
हर कदम पर सिर झुकाते
भूल बैठे सिर उठाना ।"[२५]

गुलाब सिंह के इस नवगीतांश में आधुनिक कटु सामाजिक यथार्थ, जहरीले परिवेश और विसंगत जीवन-स्थिति को व्यक्त किया गया है । यह नये ढंग की अनुभूति वस्तुगत यथार्थ से उपजी है जिसमें कवि की बौद्धिक-आंख सचेत होकर सामाजिक राग की पृष्ठभूमि में आर-पार देख रही है और भाव-

विचार का अद्भुत सन्तुलन रच रही है ।

नवगीतकारों की बौद्धिकता के तल में भाव-संवेदना का जल है, इसलिए बौद्धिक कथन के बावजूद काव्योचित राग-आर्द्रता बनी रहती है । कथन में न तो शुष्कता आ पाती है, और न ही वह गद्यात्मक सन्देश का शिकार होता है । इसका सबसे बड़ा और स्पष्ट कारण, भोगे हुए 'यथार्थ' या 'प्रामाणिक अनुभूति' को अभिव्यक्ति देना है ।

रागात्मकता से सम्पन्न शिल्पगत वस्तुपरकता काव्य को एक ठोस भूमि प्रदान करती है । यह वस्तुपरकता नवगीत की अपनी अलग विशेषता है । ऐसा करके नवगीतकार ने वैयक्तिक अनुभूतियों की उपेक्षा नहीं की है । वास्तविकता यह है कि यहां ये अनुभूतियां एक अमूर्त रागात्मक आधार कीं पुरस्कर्त्री तो हैं पर इस वैयक्तिक रागात्मकता को इस रूप में साधारणीकृत कर दिया गया है कि वह क्लासिकल स्थायित्व पा गयी है । कभी भावोच्छ्वास मात्र समझे जाने वाले गीत को यह दृढ़ता प्रदान करना नवगीत की महत्वपूर्ण शिल्पगत अभिव्यक्ति है । इस तथ्य की पुष्टि डॉ. कुंअर बेचैन की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"जिन्दगी का अर्थ मरना हो गया है
और जीने के लिए हैं
दिन बहुत सारे ।
इस समय की मेज पर
रक्खी हुई
जिन्दगी है पिनकुशन जैसी
दोस्ती का अर्थ चुभना हो गया है
और चुभने के लिए हैं
पिन बहुत सारे ।"[२६]

संदर्भ सूची :

१. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ १९६
२. महादेवी वर्मा : सन्धिनी (चिन्तन के क्षण), पृष्ठ २३
३. केदारनाथ सिंह : पांच जोड़ बांसुरी (सं. चन्द्रदेव सिंह), पृष्ठ २०८
४. प्रभाकर माचवे : तारसप्तक (सं. अज्ञेय), पृष्ठ १८६
५. गिरिजा कुमार माथुर : नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ, पृष्ट ११७
६. बाल स्वरूप राही : धर्मयुग : १६ मई, १९६५
७. श्रीकान्त वर्मा : मगध, पृष्ठ ४२
८. ठाकुर प्रसाद सिंह : नवगीत दशक-१ (सं. शम्भुनाथ सिंह), पृष्ठ १२६
९. अनूप अशेष : धर्मयुग (२२-२८ अगस्त १९८२) : सं. धर्मवीर भारती, पृष्ठ ३१
१०. शलभ श्रीराम सिंह : पांच जोड़ बांसुरी, पृष्ठ १३८
११. वही
१२. रमेश रंजक : गीत विहग उतरा, पृष्ठ ५८
१३. रामचन्द्र भूषण : पांच जोड़ बांसुरी, पृष्ठ १२३
१४. डॉ. श्याम सुन्दर दुबे : आजकल (अंक नवम्बर १९८९), पृष्ठ ७
१५. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : द्विवेदी ग्रंथावली-८, पृष्ठ १६९
१६. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ ४३
१७. रमेश रंजक : हरापन नहीं टूटेगा, पृष्ठ ५५
१८. बच्चन : पांच जोड़ बांसुरी, पृष्ठ १८१
१९. अनूप अशेष : लौट आएंगे सगुन पंछी, पृष्ठ ५, ६
२०. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा, पृष्ठ ७
२१. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ ८७
२२. निराला : गीत गुंज, पृष्ठ ६६
२३. डॉ. जगदीश गुप्त, गीत-गुंज की भूमिका, पृष्ठ ३८
२४. अनूप अशेष - नवगीत दशक-२, पृष्ठ ३९-४०
२५. गुलाब सिंह : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ ९५
२६. कुंअर बेचैन : वही, पृष्ठ ७६